अब वे एक चीज की बलि देकर दूसरी चीज को प्राप्त करने के लिए यह कहते हैं कि जम्मू की आबादी ७-८ लाख है, और बाकी प्रदेश पाकिस्तान के पास है। तो इस तरह की पैंतरेबाजी करना और एक ही सांस में दो बातें करना उन जैसे व्यक्ति के लिए शोभा-मान नहीं।

मैं यह बतलाना चाहता हूं कि उनकी ऐसी बातों से एक मैत्रीपूर्ण वातावरण पैदा नहीं हो सकता। मेरा यह कहने का अभि-प्राय नहीं कि काश्मीरी भारत के साथ नहीं। काश्मीरी भारत के साथ हैं और काश्मीर भारत का एक अंग है, किन्तु प्रश्न यह है कि वहां की जनता का मत लेना होगा जिसके लिए आप वचनबद्ध हो चुके हैं। मैं डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी से जो बुद्धिमान हैं, देशभक्त हैं, नेतागिरी कर सकते हैं और हमें रास्ता दिखा सकते हैं, यह अपील करता हूं कि वह निष्पक्ष तटस्थ भाव से इस प्रश्न को समझें, और इस बात का विश्लेषण करें कि किस व्यक्ति को इतने बड़े बवण्डर से लाभ पहुंच सकता है।

दूसरी बात यह है। आप राजनीतिक नैतिकता से विद्रोह करते हैं और बहुत अनुदार और अनुचित काम करते हैं जब आप एक ऐसे व्यक्ति को परीक्षा लेना चाहते हैं जो विषमताओं का मुकाबला करता रहा और काश्मीर तथा भारत के निकटतम संकट के समय भी भारत के साथ रहा। यदि हम जनसंख्या को ही इस बात का प्रमाप बनायें और उसी दृष्टिकोण से देखें तो जहां कहीं भी मुसलमान अधिक संख्या में थे, वह प्रदेश पाकिस्तान के साथ मिल गया, और जहां कहीं भी हिन्दुओं का बहुमत था, वह जगह हिन्दुस्तान के साथ मिल गई। काश्मीर ही एकमात्र स्थान है जहां मानवता के जीवन-दर्शन पर एक प्रयोग हो रहा है। और जिसने मुसलमानों का बहुमत होते हुए भी भारत में प्रवेश किया है। इसी विचारधारा को सफल बनाने और आगे बढ़ाने के लिए काश्मीर संघर्ष कर रहा है। काश्मीर ही एक ऐसा स्थान है जहां हिन्दू और मुसलमान मित्रवत रहते हुए आपत्तियों का सामना करते रहे, और अब हम यही चाहते हैं कि उसी मैत्रीपूर्ण वातावरण में काश्मीर में प्रशासन कार्य चले। मैं विश्वास करता हूं कि हमारे माननीय श्यामा-प्रसाद मुखर्जी स्थिति समझलेंगे और उसी के प्रकाश में हमारा नेतृत्व करेंगे।

श्री जवाहरलाल नेहरू: जिन माननीय सदस्यों ने इस बहस के दौरान में जम्मू तथा काश्मीर के सम्बन्ध में भारतीय सरकार की नीति के विषय में उदारता से बोला है, मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूं। आज हमारी उस नीति को खुले दिल से स्वीकार किया गया है। चुनांचि उसकी आलोचना भी की गई है और मैं उसका स्वगात करता हूं क्योंकि आलोचना से कोई भी विशष स्थिति समझी जाती है, और काश्मीर जैसी कठिन और नाजुक समस्या के जितने भी पहलुओं पर बहस हो, उतनी ही बातों पर प्रकाश पड़ेगा और उतना ही वह हम सब के लिए अच्छा रहेगा। अब हम पांच वर्षों से काश्मीर की समस्या पर विचार करते रहे हैं। एक वर्ष से अधिक समय तक हमने वहां लड़ाई लड़ी और हमारे बहुत से वीर युवक वहां जाकर रहे भी। और इस काश्मीर की समस्या को हमने संसार के कई एक न्याय-मंडलों के समक्ष रखा, हम संयुक्त राष्ट्र संघ के पास भी गए। कुछ भी हो, सबसे बड़ी बात जो हुई वह यह है कि हमने जम्मू तथा काश्मीर के निवासियों के हृदयों में संघर्ष की आग भड़का दी है। इस संसद् के प्रति पूरा सम्मान रखते हुए मैं यह कहना चाहता हूं कि अन्त में काश्मीर के लोग – वहां के पुरुष और वहां की स्त्रियां—ही इस बात का निर्णय करेंगे यहां की संसद् और संयुक्त राष्ट्र संघ इस बात

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

का निर्णय नहीं कर सकते। हम ने काश्मीर की इस समस्या को कई एक तरीकों से हल करने का प्रयास किया है। किन्तु हमने अभी उसको सुलझाया नहीं है। मैं सदन में स्पष्टवादिता के साथ कहना चाहता हूं कि मैं इस मामले को जल्दी से निबटाने की कोई प्रतिज्ञा भी नहीं कर सकता। भला मैं ऐसी प्रतिज्ञा भी क्यों करूं जो मैं बाद में पूरी न कर सकूं। मैं सदन को यह भी बतला दूं कि आज के संसार में रोज ही ऐसी समस्यायें होती हैं, जो छोटी या बड़ी होने के नाते संसार के भविष्य पर अपना प्रभाव रखती ही हैं, किन्तु प्रति मास, प्रति वर्ष ऐसी की ऐसी बनी रहती हैं, सुलझती नहीं। इतना ही बहुत कुछ है कि ये समस्यायें बिगड़ती नहीं। इसी को बहुत कुछ समझना चाहिए कि कोई समस्या बिगड़ती न हो। इसमें भी कोई बात बिगड़ नहीं जाती कि विदेशों में रहने वाले वे लोग जो हमें परामर्श देना अपना कर्तव्य समझते हैं, हम से कहा करते हैं: "आप काश्मीर के प्रश्न को, जिससे बहुत बड़ी बातें पैदा हो सकती हैं, और विश्व में संघर्ष हो सकता है, क्यों नहीं सुलझाते?" विदेशों में बहुत से ऐसे व्यक्ति हैं जो हमें उदारता से परामर्श देते हैं। उनको सुन कर हमें उन्हें यह कहने की तबियत होती है कि क्या वे भी, दूरपूर्व या यूरोप की कई समस्याओं में व्यस्त हैं, और उनकी वे समस्यायें दिन प्रति दिन, एवं वर्ष प्रति वर्ष क्यों वैसी की वैसी बनी रही हैं। तबियत उनसे यह भी कहने को करती है कि वे उन्हें क्यों नहीं सुलझाते? भला क्यों ऐसी बात होती है कि यदि हम काश्मीर की समस्या को नहीं सुलझा सकते तो हमें दोषी ठहराया जाता है, और वे स्वयं अपनी समस्याओं को न केवल सुलझा नहीं सकते अपितु और भी स्यायें पैदा कर देते हैं। किन्तु हम ऐसी थोथी बात नहीं कहेंगे क्योंकि हम स्वयं कष्टों में पड़े हैं और विश्व की उन कई एक विषमताओं का सामना कर रहे हैं जो किसी भी राष्ट्र के वश या अधिकार में नहीं हैं।

अतः मैं यह चाहता हूं कि सदन इस समस्या पर विचार करे, जैसा वह आज तक करता भी रहा है, इसके विविध पहलुओं पर विचार करे, और कुछ समय के लिए उन छोटी छोटी वकीलों जैसी बातों को छोड़ दे——मुझे वकीलों के लिए पूरा सम्मान है, और मैं उनकी प्रतिष्ठा करता हूं, देश में उनका भी स्थान है, बशर्ते कि वे उसे बना रख सकें। कई एक बातें कही गई हैं। मेरे मान्य मित्र डा० मुखर्जी ने कभी इस खण्ड पर और कभी उस खण्ड पर बहुत कुछ कहा है। यदि मेरे पास समय होता तो मैं उन सभी खण्डों पर विचार कर लेता, किन्तु सत्य यह है कि ऐसी बातों का कोई भी महत्व नहीं कि अमुक खण्ड में क्या बताया गया है अथवा उसकी सार्थकता क्या है। आप इस समस्या को किस तरह समझते हैं, यही महत्व की बात है, और इस समस्या का मूल-आधार ही महत्वपूर्ण है——यानी क्या आप इसे समझते हैं या नहीं——महत्वपूर्ण बात यह है कि वास्तव में आपका क्या उद्देश्य है, और उस उद्देश्य को प्राप्त करने का मार्ग क्या है। यदि आपका यही उद्देश्य है——मेरा यही दावा है कि यही बात होगी——कि इस समस्या का निर्णय काश्मीर के लोगों द्वारा ही उनकी सद्भावना से, उन के मन और मस्तिष्क आपके साथ रहने से, होगा, तब तो आप को वही उद्देश्य प्राप्त करने के लिये कोई ऐसी नीति अपनानी चाहिये और इस प्रकार की नीति के अतिरिक्त और कोई भी सुझाव नहीं हो सकता। भला बताइये कि आप क्यों धमकियां देते हैं? उनसे क्यों कहा जाता है: "आप इस तरह करें, और उस तरह करें?" इन बातों से कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। मुझे इस अर्थ में काश्मीरी कहा और समझा जाता है कि आज से दस पीढ़िय

पहले मेरे पूर्वज काश्मीर से भारत के इधर के भाग में आये थे । आज मैं उस बन्धन से बन्धा नहीं, अपितु उन बन्धनों से बन्धा हूं जो इधर के पांच वर्षों में पैदा हुए हैं । और जिन के कारण हम एक दूसरे के निकट पहुंचे हैं। मैं ही नहीं बन्धा हूं—मैं जनता का एक प्रतीक हूं । भारत और काश्मीर की असंख्य जनता एक समान शत्रु के विरुद्ध पांच वर्ष तक संघर्ष करते रहने के कारण एक बन्धन में बन्ध चुकी है । अतः हम इस मूल प्रस्थापना को स्वीकार करते हैं कि अन्ततः काश्मीर की जनता की सद्भावना और उन के सहयोग से ही इस प्रश्न को हल किया जायेगा । हां, यह भी बता दूं कि इस संसद् की सद्भावना या इस के सहयोग से यह समस्या हल नहीं की जा सकती—यह इस लिये नहीं कि संसद् को वहां की समस्या हल करने की शक्ति नहीं ; मैं संसद् की शक्ति को स्वीकार करता हूं, बल्कि इस लिये कि यह संसद् इस विधि से काम नहीं करती, जो एक ठीक विधि है, और चूंकि इस संसद् ने यह नियम बनाया है कि जम्मू तथा काश्मीर राज्य के सम्बन्ध में कोई निश्चित नीति चलाई जायेगी जो आज तक चलती भी रही है । यह इसलिये है कि हम अपनी स्थिति के अनुसार अन्य लोगों की इच्छाओं पर अपना मत नहीं लादना चाहते । हम अन्य प्रणालियों, और तरीकों से चलते हैं, और अन्य नीतियों का अनुसरण करते हैं ।

अतएव, हमें अपने मस्तिष्क में इस बात के विषय में बिल्कुल स्वच्छ और स्पष्ट होना चाहिये कि अन्ततः जम्मू तथा काश्मीर राज्य का निर्णय वहां के लोगों द्वारा ही होगा । इस निष्कर्ष पर पहुंच कर हमें इसी बात के अनुसार अन्य नीतियों को भी रूप देना होगा, और इधर उधर की बातों पर दोषान्वेषण करना छोड़ना पड़ेगा क्यों कि हम दोषान्वेषण नहीं करना चाहते । जम्मू और काश्मीर में बहुत सी ऐसी घटनायें हुई हैं जिन्हें मैं स्वीकार नहीं करता—किन्तु ये बातें हो चुकी हैं । मुझे इस बात में भी सन्देह नहीं लग रहा कि वहां ऐसी बहुत सी घटनायें घट चुकी हैं और घटेंगी, जिन्हें मेरे मान्य विरोधी सदस्य स्वीकार नहीं करें और मैं भी स्वीकार नहीं करूं—यह कुछ ऐसा ही है जैसे कि भारत भर में—जम्मू और काश्मीर में ही नहीं—कई ऐसी बातें हो जाती हैं जिन्हें मैं स्वीकार नहीं करता । भारत में जो कुछ भी हो जाता है, उस सारे पर मेरा वश नहीं—मैं ऐसा मानता भी नहीं कि हर किसी बात पर मेरा ही हाथ रहे—और मैं वैसी बातों को सहन करता हूं । किन्तु हमारी प्रणाली क्या होगी । और हम इसे कैसे समझ और सुलझा पायेंगे ? यदि हम इस समस्या को उसी प्रकार समझते हैं तो हमें कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिये जो हमें उल्टी दिशा में पहुंचायें, हमारी नीति का महत्व कम कर दे, रास्ता बिगाड़ दे और उन के हाथ मजबूत बना दे जो हमारा विरोध कर रहे हैं, और हमारी शत्रुता करते हैं। हमें इस बुनियादी बात को समझना होगा, और इस के सम्बन्ध में अपना मस्तिष्क स्वच्छ रखना होगा । आप शेख अब्दुल्ला की आलोचना कर सकते हैं । शेख अब्दुल्ला कोई ईश्वर तो नहीं, वह बहुत सी गलतियां करता है, और बहुत सी गलतियां करेगा । वह एक बहादुर मनुष्य है और अपनी जनता का एक बड़ा नेता है । यही एक बहुत बड़ी बात है । उस ने सुख-दुख में और ऐसे समयों में जब वहां की जनता तबाही की ओर जा रही थी—अपनी जनता का नेतृत्व किया है । वैसे कड़े समय में भी वह नेतृत्व से नहीं चूका—और यही बात किसी भी मनुष्य की विशेषता हुआ करती है । तो हुआ क्या यदि उस ने कभी कोई ऐसी-वैसी बात कही या कोई गलती की ? सैकड़ों गलतियों के बावजूद भी बड़प्पन बड़प्पन कहलाता है । यह शेख अब्दुल्ला या किसी अन्य के साथ की ही बात नहीं है ।

[पं जवाहरलाल नेहरु]

किसी भी व्यक्तिगत मामले की अपेक्षा यह काफी बड़ा मामला है, और जैसा कि सदन जानता भी है, काश्मीर का यह प्रश्न निश्चय ही हमारे लिये एक प्रदेश या उपनिवेश का प्रश्न नहीं रहा है। हमें कोई भी लाभ नहीं: आर्थिक दृष्टि से हमें कोई भी लाभ नहीं है—जब तक इस का विकास हो तब तक हमें बहुत सा धन व्यय करना पड़ेगा, क्योंकि काश्मीर प्रदेश बहुत ही समृद्ध है, और जब तक इस का विकास होगा तब तक हमें बहुत सा धन व्यय करना होगा। कुछ भी हो, हम ने किसी भी लाभ के लिये काश्मीर पर लालच भरी नज़रें नहीं लगाई हैं। पुराने बन्धनों, पुरानी भावनाओं, और हां, नई भावुकताओं के लिये हम ने काश्मीर पर नज़रें फैला दी हैं, और अब काश्मीर हमारे हृदय और मस्तिष्क के बिल्कुल निकट आ चुका है। और, मानलीजिये कि दुर्भाग्य से काश्मीर भारत से अलग हो जाये, तो हम सभी को बहुत दुख होगा। किन्तु वह चाहे दुख हो अथवा आपत्ति, यदि काश्मीर के लोग भारत से सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं, तो तोड़ दें, क्योंकि, भले ही उनके अलग होने से दुःख और कष्ट हो, हम कभी भी उन की इच्छाओं के विरुद्ध अपने साथ रखने के लिये विवश नहीं करेंगे। भारत इसी नीति का अनुसरण करेगा, और चूंकि भारत इस प्रकार की नीति का अनुसरण करेगा, लोग उस के साथ रहेंगे और उस के पास चले आयेंगे। कारण यह है कि हम को आपस में बांध कर रखने वाले बन्धन सेना के या संविधान के बन्धन नहीं होंगे—जैसा कि कई बार निर्देश हो चुका है—बल्कि प्रेम और स्नेह, तथा पारस्परिक समझ के बन्धन होंगे जो संविधान—कानून और सेना के बन्धनों की अपेक्षा अधिक दृढ़ हैं।

६ म० प०

समस्या को जब इस प्रकार से समझा जाता हो तो विरोधी दल के कई माननीय सदस्यों द्वारा दिये गये तर्क बिल्कुल भी लागू नहीं होते। उन बातों में स्थिति की पूरी समझ नहीं, अतः वह लागू नहीं हो सकती हैं। कई बातें हुई हैं जिन की मैं आलोचना कर सकता हूं, मैं यह भी चाहता हूं कि कोई एक बातें हो जातीं किन्तु वे नहीं हो पाई हैं—इस तरह कहना बहुत ही आसान है। मैं भले ही उन्हें सुधारने का प्रयत्न करूं, किन्तु यह जुदा बात है। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार के आचरण से आप अपने उद्देश्य की पूर्ति कर रहे हैं। अथवा क्या आप उद्देश्य के पथ पर जा रहे हैं? मुझ से पूर्व बोलने वाले काश्मीर का सदस्य श्रीनगर के अल्पसंख्यक संप्रदाय—काश्मीरी पंडित समुदाय—का प्रतिनिधि है, और मुझ से अधिक काश्मीरी पंडित है—चुनाचि वह आप को काश्मीर घाटी में रहने वाले क्या हिन्दू, क्या मुल्सलमान—विशेषतया हिन्दुओं और सिखों का, उन दिनों का चित्रमय वर्णन दे चुका है जब वे सभी भविष्य के खतरे से थर्रा रहे थे। किसी को भी इस बात का पता नहीं था, और उन्हें कैसे पता चलता कि कल क्या होगा। काश्मीर के लोग विशेषतया यहां की महिलायें काश्मीर से बाहर के प्रदेशों में भी विख्यात हैं। तो इस बात का भी ध्यान रहे कि बहुत बड़ी संख्या में काश्मीर की हिन्दू और मुसलमान स्त्रियां उन आक्रान्ताओं द्वारा उठाई गईं, और अफगानिस्तान तक पहुंचाई गईं। कई स्त्रियों को वहां से भी दूर प्रदेशों में पहुंचाया गया। और चन्द टकों में बेचा गया। माननीय सदस्यों को इन बातों पर ध्यान देना चाहिये कि इन कहानियों और वर्णनों से काश्मीर के लोगों और काश्मीर से सम्बद्ध लोगों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा, और उन्होंने किस तरह यह सोचा होगा।

कि उस की अपनी मां—बहनों और पत्नियों का भी कल यही हाल होगा । अब देखिये कि वे उन सभी घटनाओं को पार कर गये, और सभी बातों का मुकाबला करते रहे : भागे नहीं । और, मैं यह भी बता दूं कि जब तक आप के पास मोटर आदि जैसी सवारियां भी नहीं हों तब तक आप वहां की उन पहाड़ियों को पार नहीं कर सकते । तो, इस तरह इन पांच वर्षों में यह ही ऊच-नीच रहे हैं। इस में कोई भी सन्देह नहीं कि बहुत सी गलतियां हो गई होंगी, किन्तु मैं समझता हूं कि इन पुराने पांच वर्षों पर निगाह डालते हुए मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि काश्मीर की जनता, भारत की जनता और भारत की सरकार ने बहुत सी छोटी गलतियां करने के बावजूद भी सचाई का रास्ता अपनाया है और ये सभी उसी पर चलते रहे हैं । ठीक है, इन सभी ने यह सीधा और तंग रास्ता नहीं छोड़ा है । जब कभी यह रास्ता ठीक अवसर का नहीं भी दिखाई दिया, और जब कभी लोग अप्रसन्न भी रहे, उन्हों ने यही रास्ता लिया, यद्यपि कभी कभी थोड़ा सा परिवर्तन करने से इन्हें विदेशों से लाभ प्राप्त होता । उसी समय विदेशों ने हमारी ओर देखा भी और हम से कुछ आशायें भी कीं । इस बात से कोई अन्तर नहीं पड़ा कि हमारा उन के सम्बन्ध में क्या विचार था, किन्तु वे सुरक्षा समिति में थे और बहुत अधिक बोला करते थे जिस में कभी बुद्धि की बात होती थी और कभी मूर्खता की । यही इस बीच होता रहा, और हम ने, हमारे उन तथाकथित न्यायाधीशों की बातें सहन कीं ; क्योंकि वे जिस बात का न्याय देने का प्रयास करते थे वह इस अर्थ में हमारे लिये महत्वपूर्ण थी कि हम काश्मीरियों के निकट थे, और उस का यह कारण नहीं था कि हम उस पर अधिकार करना चाहते थे, जैसा कि कई सदस्यों ने यहां बताया । तो, सुरक्षा समिति में उन सदस्यों ने काश्मीर को एक भौगोलिक इकाई जान कर एक तमाशे की चीज़ बनाया, और इधर हमें काश्मीर इतना प्यारा था, और उन सभी परिस्थितियों के कारण यह हमारी अनुभूतियों, विचारों, भावों, और भावुकताओं में इतना जकड़ा हुआ था कि हमारा एक अंग बन चुका था । और हमें उस समय कितना दुःख हुआ जब विदेशियों ने हम से आंय-बांय-शांय किया और हमें साम्राज्यवादी और विजेता कह कर काश्मीर का प्रश्न टाला । हम ने अपने आप पर बहुत ही नियंत्रण किया, यद्यपि हमें उन की इस बेतुकी आलोचना को सुन कर प्रायः क्रोध आता था और उस समय हमें बहुत दुःख होता था जब वे भारत जैसे बड़े देश के विरुद्ध बोलते थे । वे हम से साम्राज्यवाद की बात करते थे जब कि वे स्वयं अपना साम्राज्यवाद चला रहे थे, और युद्ध लड़ने के अतिरिक्त भावी युद्ध की तैयारियां भी कर रहे थे । उन्हों ने भारत से इसी प्रकार की बातें कीं ।

और चूंकि हम काश्मीर को प्रादेशिक आक्रमण से बचाने के लिये उन के पास गये, उन्हों ने हम से यह कहने का साहस किया कि भारत में साम्राज्यशाही चलती है । तो, जैसा मैं बतला भी चुका हूं, हम ने अपने आप पर बहुत ही नियंत्रण रखा और भविष्य में भी हम अपने आप को वश में रखेंगे, किन्तु हमारे इस वश का यह मतलब नहीं कि हम कमज़ोर हैं । इस का यह मतलब नहीं कि हम इस पक्ष में कमज़ोर पड़ गये हैं और हम ने हार मान ली है । चूंकि हम दृढ़ और विश्वस्त थे कि हम ठीक रास्ते पर हैं, अतः अन्त तक हम इस बात को जानते थे, क्योंकि जैसा मैं बतला चुका हूं—और मैं ने ईमानदारी से कहा भी है—मैं ने अपने दिल को टटोला है, और काश्मीर के सम्बन्ध में उठाये गये हर किसी कदम पर पूरा विचार किया है—और अन्ततः जब कि मेरी सरकार उस नीति के लिये

[पं जवाहरलाल नेहरु]

उत्तरदायी भी है, स्वयं मैं विगत पांच वर्षों से काश्मीर के सम्बन्ध में उठाये गये हर कदम के साथ सम्बद्ध रहा हूं । जब मैं विगत इन पांच वर्षों पर नज़र दौड़ाता हूं, तो मेरी समझ में यह आता है कि कई ऐसी बातें हैं जो मैं ने गलत की हों—हो सकता है कि वे छोटी छोटी बातें ही रही हों -- किन्तु मैं ने ऐसा कोई भी बड़ा कदम नहीं उठाया जो गलत रहा हो या अवसर के अनुसार नहीं पड़ा हो । हो सकता है कि हम ने गलत अन्दाज़ा लगाया हो । किन्तु मौलिक रूप से हम ने उस रोज़ सही कदम उठाया जब अक्तूबर, १९४७ के अन्तिम सप्ताह में हमारे बहादुर जवानों ने काश्मीर की पहाड़ियों के ऊपर से उड़ान भरी और वहां पर मोर्चा बना कर वहां के लोगों की रक्षा की । अन्य बातों में—युद्ध टालने के कारण या शान्ति के लिये—यदि आप इसे ऐसा नाम देना चाहते हों--हम ने शायद कभी कोई गलती की हो—यह दूसरी बात है । इन बातों में मैं हमेशा गलती करना चाहता हूं किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि हमें लालची, साम्राज्यवादी, झूठा और प्रतिज्ञा-उल्लंघन कहा जाय—तो, मैं इस बात को दोहरा रहा हूं कि हम ने काश्मीर में जो कोई भी कदम उठाया, संयुक्त राष्ट्र संघ या उन के आयोग, अथवा यहां आने वाले उनके किसी अन्य प्रतिनिधि के समक्ष जो भी वचन दिया या प्रतिज्ञा की, और जो कोई भी आश्वासन दिया, उसका हम ने पाकिस्तान की अपेक्षा अक्षरशः पालन किया है, और इस सीमा तक पालया है कि पाकिस्तान की पहुंच से बाहर है क्योंकि काश्मीर की यह सारी वार्ता या वहां पर जा कर यह सब सैनिक कार्य का किया जाना पाकिस्तान के एक बुनियादी झूठ पर ही आधारित है कि वह काश्मीर पर आक्रमण करने के बाद आक्रमण की बात नहीं मानता । मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि वे काशमीर पर आक्रमण करना चाहते हैं । वे चले जायें और लड़ें, किन्तु वे झूठ क्यों बोलते हैं ? छः महीने तक वे वहां लड़ते रहे, और बाद में कहने लगे कि उन्हों ने नहीं लड़ा । जब भी कोई बात किसी झूठ पर आधारित की जाय तो सुरक्षा परिषद् में प्रति मास झूठ दोहराया जायेगा । काश्मीर में पाकिस्तानियों की सेनायें थीं, और उन के विदेश मंत्री ने कहा कि वहां उनकी सेनायें नहीं हैं--कितने आश्चर्य की बात है—और जब संयुक्तराष्ट्र आयोग भारत में था, और मोर्चों पर जाने वाला था तो, उस समय वे इस तथ्य को किसी भी तरह नहीं छिपा सकते थे । तब उन्हों ने यह बात स्वीकार की, और वह भी किस तरह ? उन्हें किसी न किसी ढंग से इसे स्वीकार करना पड़ा, और पाकिस्तानी सेना के महाबलाधिकृत ने एक पत्र भेजा; चुनांचि वह महाबलाधिकृत एक सुप्रसिद्ध ब्रिटिश पदाधिकारी था । उस महाबलाधिकृत ने उस पत्र में यह लिख कर भेजा कि वह पाकिस्तान के हित में, यानी पाकिस्तान की रक्षा करने के लिये वहां की सेनायें काश्मीर भेजने पर विवश हुआ क्योंकि वह इस बात से डरता था कि भारत काश्मीर के बीच से सेनायें भेज कर मध्य एशिया की ओर से पाकिस्तान पर आक्रमण कर लेगा । तो काश्मीर की इस असाधारण कहानी का प्रारम्भ यहीं से हुआ और यह भी है कि बार बार इसे दोहराया जा रहा है क्यों कि लोग इसे भूलते जाते हैं—हां, लोग, माननीय सदस्य नहीं—चुनांचि वह मामला अन्तर्राष्ट्रीय बन चुका है और विश्व की भिन्न भिन्न राजधानियों में इस की चर्चा हो रही है । आक्रमण के सीधे-सादे तथ्य, लूट-मार, आग, और गुंडागर्दी की यह सादी कहानी भूली जा रही है, और उपेक्षित हो रही है, यहां तक कि इन तथ्यों को छोड़ कर अन्य बातों पर बहस हुआ करती है । काश्मीर समस्या ने इन पांच वर्षों में हमें बहुत ही विचित्र पाठ पढ़ाया है—हां शिक्षा दी है—विश्व की राजनीति में, राष्ट्रों के आचरण में और इस

बात में कि संसार के बड़े बड़े राष्ट्र भी अपने हितों में सम्बन्ध में किस तरह सफ़ाई से नहीं देख सकते और बवण्डर खड़ा कर देते हैं—इन बातों की शिक्षा भी हमें मिली है। कदाचित् मैं प्रसंग से थोड़ा सा दूर जा रहा हूं, किन्तु मैं पुनः इसी मामले के सम्बन्ध में आप से कहना चाहता हूं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष बताने, अथवा काश्मीर की जनता को वचन देने के कारण ही नहीं, बल्कि काश्मीर को छोड़ कर अन्य राष्ट्रों के साथ चलाई गई नीति के अनुसार और अपनी परम्परा के अनुसार हम यह चाहेंगे कि केवल काश्मीर की जनता इस बात का निश्चय कर सकती है और यदि मुझे यह भी बताने की आज्ञा दी जाये तो इस बात को स्पष्ट करना चाहता हूं कि इन विगत पांच वर्षों में हम ने जो भी कष्ट झेले और जितना कुछ भी किया, उस सब के बावजूद यदि हमें साफ शब्दों में कल यह बताया जाय कि काश्मीर की जनता हमें वहां से हटाना चाहती है, तो हम चाहे कितने भी दुखी हो जायें और कितना भी बुरा मनायें, हम वहां से निकल आयेंगे क्योंकि हम उन की इच्छाओं के विरुद्ध वहां नहीं रहना चाहते। हम नेज़े या बन्दूक के ज़ोर से अपने आप को उन पर नहीं लादना चाहते यदि ऐसी बात हो जाये तो उस में अन्तिम एवं मुख्य निर्णायक बात उन की इच्छायें हो हो सकती हैं।

यह सच है कि उन की इच्छाओं से हमारा कोई गलत काम अभिप्रेत नहीं है। मान-लीजिये, वे हम से वहां कोई गलत काम करने को कहते हैं, तो हम इन्कार करेंगे। हम वैसा नहीं कर सकते। हम इतना तक कहें : "हम इसी बात को अच्छा समझते हैं कि ऐसी गंदी और गलत संगति से बच जायें।" यह किसी भी आदमी की समझ में आ सकती है। हम गलत संगति नहीं चाहते हैं। कोई भी व्यक्ति हमें बुरी या गलत संगति के लिये मजबूर नहीं कर सकता जिस तरह कि हम किसी भी व्यक्ति को उस की इच्छाओं के विरुद्ध हमारे साथ रहने के लिये विवश नहीं कर सकते। संगति या साथ तो पारस्परिक समझ, स्नेह, मेल, आदि की चीज़ है, और यदि कोई संगति हो भी तो उस में हमारी इच्छाओं और निश्चय पर सब कुछ निर्भर करता है। काश्मीर के लोगों की सद्भावना अर्जित करने की इच्छा में हम अपने लिये दुर्भावना का अर्जन नहीं कर सकते, न तो गलत रास्ता ले सकते हैं। वह तो एक भिन्न मामला है। हम इस मामले को एक सौदे के रूप में नहीं समझते, अथवा दो अनजाने आदमियों के बीच की बातचीत नहीं समझते, अपितु उन दो साझेदारों, या दो भाइयों के बीच की बात समझते हैं जो इसे एक कठिन और नाज़ुक समस्या समझते हैं और कोई रास्ता ढूंढ निकालना चाहते हैं। वह रास्ता पूरी तरह से तर्क-सम्मत न हो, इस कानून या उस संविधान की दृष्टि से पूर्णतया उचित न हो किन्तु यदि वह प्रभावशाली है तो वह एक अच्छा रास्ता है—वह चाहे कुछ कानूनी दलीलों अथवा तार्किक दलीलों के विरुद्ध हो या न हो।

मेरे माननीय मित्र ने कई मामलों की ओर निर्देश किया। इस सिलसिले में मैं एक बात कहना चाहता हूं यद्यपि वह किसी हद तक संगत नहीं और चूंकि सदन में कई एक वकील हैं अतः मुझे कहने में कुछ डर सा लग रहा है। जिन दिनों ब्रिटिश लोग यहां से चले गये उन दिनों भारत में पैदा हुई स्थिति के सम्बन्ध में बहुत सी गलत फहमी थी, क्यों कि उन दिनों विभाजन हुआ था और ग्रेट ब्रिटेन ने भारतीय राज्यों, आदि के सम्बन्ध में वक्तव्य जारी किया था। अब मैं इस समय एक संविधानिक वकील और विधिवेत्ता के नाते अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करना चाहता हूं। वह इस प्रकार है। विभाजन से भारत का एक भाग जो हमारी राय से इस से पृथक् किया गया, अलग हो गया। किन्तु भारत का शेष भाग जिस में

[पंडित फ़ोतेदार]

राज्य शामिल हैं, भारत का एक भाग रहा। जब तक उन्हें अलग करने वाली कोई शक्ति सामने नहीं आई, तब हम सभी एक साथ रहे, और इस समय भी एक साथ हैं। हम विभाजन से बाहर नहीं निकले। पाकिस्तान तो विभाजन के समय ही अलग कर दिया गया। भारत पहले से था, भारत बाद में भी रहा, भारत इस समय भी है और भारत रहेगा भी। इस प्रकार, प्रत्येक राज्य, जब तक वह भारत के साथ सम्बन्ध-विच्छेद करने के सम्बन्ध में कोई अन्तिम निश्चय नहीं कर लेता —भारत के साथ यदि आप चाहें तो इस अन्तिम अवधि के लिये सम्बन्ध बनाये रहें। ब्रिटिश सरकार भले ही कुछ भी वक्तव्य निकाल किन्तु ऐसी परिस्थिति में भारत में असंख्य अधिकारी नहीं रह सकते थे।

१९४७ में भारत से अंग्रेज़ी शक्ति हट जाने के कारण हम किसी हद तक उसी स्थिति में चले गये जो स्थिति अंग्रेज़ों के भारत आने के समय थी। अन्य बातों में भी यह एक रुचिकर और अच्छा उदाहरण है, किन्तु मैं इसी के पीछे नहीं पड़ूंगा क्योंकि इस से शायद विवादास्पद दलीलबाज़ी शुरू होगी। जिन दिनों अंग्रेज़ों ने यहां पर अधिकार जमाया और अपने राज्य की स्थापना की, उन दिनों इस बात की स्पष्टतया दिखाई दी कि उन की शक्ति का भारत में प्रभुत्व होना चाहिये, और उन को छोड़ कर कोई अन्य राजा स्वतंत्र नहीं रह सकता। हो सकता है कि वे अर्द्ध-स्वतंत्र रहें या अधीनस्थ रहने के नाते अंग्रेज़ों द्वारा रक्षित हों, तो इस तरह की बातें थीं। धीरे-धीरे अंग्रेज़ी शक्ति ने इन सभी राजकुमारों—महाराजाओं को, अपने राज्यों में अधीनस्थों के रूप में शामिल कर लिया। अतः अंग्रेज़ों के जाने के बाद यह असंभव था कि छोटे छोटे स्वतंत्र प्रदेश भारत में रहते—दूर भूतकाल की अपेक्षा भी यह बात कठिन थी। इस में सन्देह नहीं कि पाकिस्तान हम से अलग था, किन्तु शेष के लिये यह अनिवार्य था कि राजे महाराजे और अन्य सरदार—चाहे कोई भी हो—वे मानते हों या नहीं मानते हों भारतीय गणतन्त्र का प्रभुत्व स्वीकार करें, और उस के अधीन रहें। और यदि ऐसी बात थी भी, और यदि, काश्मीर जैसा कि हुआ भी, इस बात का निश्चय नहीं कर सका कि उसे भारत में प्रवेश कर लेना चाहिये या पाकिस्तान के साथ रहना चाहिये, और हम ने भी कुछ समय के लिये मामले को स्थगित रखा, तो उस से काश्मीर स्वतंत्र नहीं हुआ। चुनांचि वह स्वतंत्र नहीं था और तब भी यदि काश्मीर के साथ कोई घटना घटती हमारा एक अंग होने के नाते हम पर उस का उत्तरदायित्व था। मैं यह इसलिये कहना चाहता हूं क्योंकी काश्मीर की सहायता करना तो हमारा कर्तव्य था—भले ही वह भारत में प्रवेश कर लेता या अलग हो जाता। इस निरन्तर सत्ताधारी अंग होने के नाते अन्य भागों के प्रति भी भारत का उत्तरदायित्व जारी रहा—केवल उन भागों का नहीं रहा जो निश्चयपूर्वक एवं जानबूझ कर भारत से अलग हो गये थे।

डा० खरे ने यह विचित्र बात कही कि कहीं पर हिन्दुओं को मारा गया। मैंने पहली बार यह बात सुनी है। सत्य यह है कि मैं निर्दिष्ट स्थान का नाम नहीं जान सका। कदाचित् वे भूगोल में कमज़ोर रहे होंगे। वे शायद पाकिस्तान को ध्यान में ला रहे थे। मेरे मस्तिष्क में ज़रा सी भी धारणा नहीं कि मैं उन की बात को काश्मीर के प्रसंग में जोड़ दूं।

डा० एस० पी० मुखर्जी : वह मीरपुर, पुंछ की ओर निर्दिष्ट कर रहे थे—चुनांचि ये दोनों स्थान जम्मू तथा काश्मीर में हैं।

श्री जवाहर लाल नेहरू : इस में कोई संदेह नहीं कि मीरपुर में लोग मारे गये—मैं उन की संख्या नहीं बता सकता। मुझे उन की बताई हुई संख्या पर भी सन्देह है क्योंकि सारे मीर-

पुर की कुल आबादी उतनी नहीं थी, जितनी उन्हों ने मेरे हुओं की संख्या बता दी । इस में भी सन्देह नहीं कि वहां पाकिस्तानी सेनाओं और आक्रान्ताओं के आने के समय मारकाट हुई थी ।

"एकाधिपत्य" राज्य शब्द का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है । मेरी समझ में नहीं आता कि इस शब्द को किस अर्थ में प्रयुक्त किया गया था । भारत में कोई भी एकाधिपति राजा नहीं है । मैं इस शब्द का अर्थ तो समझता हूं, किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि क्यों हमें धोका देने के लिये इन शब्दों का प्रयोग किया जाता है । हमारे भारत में कई ऐसे व्यक्ति तो हैं जिन्हें राज्य मंत्रालय की उदारता से अब भी 'शासक' कहा जाता है । यह क्यों कहा जाता है, मुझे मालूम नहीं । लेकिन वे किसी पर भी शासन नहीं करते । विगत तीन चार वर्षों से हमारे राज्य मंत्रालय ने उदारता दिखा कर प्रसिद्धि तो पाई है, किन्तु मुझे बड़ा डर लग रहा है कि यदि हम बहुत अधिक समय तक उदार नहीं रह सकते ।

गृह कार्य तथा राज्य मंत्री (डा० काटजू): उन्हें शासक नहीं अपितु भूतपूर्व शासक कहा जाता है ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : मेरा विचार है कि उन्हें शासक कहा जाता है ।

डा०काटजू : मैं सदा 'भूतपूर्व-शासक' शब्द का प्रयोग करता हूं ।

श्री जवाहरलाल नेहरू : मुझे स्मरण है कि कुछ समय पहले राज्य मंत्रालय ने मुझ से कहा था: "इस में सन्देह नहीं कि अब उन की पहले की स्थिति नहीं रही है । वे तो बन्दी हैं । क्या आप को इस बात से कोई अन्तर पड़ेगा यदि हम उन को चापलूसी के लिये अभी भी उन्हें शासक कहें ।" मैं ने उत्तर में कहा, "अपने आप को आप इसी बात से हर्षित कीजिये ।" किन्तु इस प्रकार की शब्दावली का प्रयोग गलत है क्यों कि इन से हम गलत नतीजे पर पहुंचते हैं, जैसे कि एकाधिपत्य शब्द है ।

भारत में कोई भी एकाधिपत्य नहीं । हां, कई एक जगहों में कई परिवार हैं—राजाओं के परिवार, और उन की लम्बी लम्बी पदावलियां हैं, और संपत्ति भी है । वे भावी पीढ़ियों में अपनी उसी सम्पत्ति पर जीने की आशा करते हैं । उन के अतिरिक्त कई एक राजप्रमुख हैं । अब ३ ऐसे राज्य हैं जहां राज-प्रमुखों का मुख्यत्व है : अन्य राज्यों में राज्य-समूह हैं जहां कोई भी शासक अथवा भूतपूर्व शासक जीवन भर के लिये राजप्रमुख रखा गया है ।

पंडित ठाकुर दास भार्गव : वे भूतपूर्व शासक नहीं हैं । संविधान की परिभाषा के अनुसार उन्हें शासक कहा जाता है ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : इसी से सिद्ध होता है कि संविधान में संशोधन की आवश्यकता है ।

तो इस प्रकार हमारे यहां ये राजप्रमुख हैं । उन में से कई एक तो बहुत ही अच्छे हैं—इस में कोई व्यक्तिगत बात नहीं—और कई एक ऐसे हैं जिन्हें इतना अच्छा नहीं कहा जा सकता । किन्तु यह स्पष्ट है कि किसी भी व्यक्ति को जीवन भर पदावधि दिये रखना न तो आधुनिक विचार धारा के अनुकूल है और न उस में विद्वत्ता है । हो सकता है कि विशेष घटनाओं में हम ने वैसी बात की हो, जैसा हम ने किया भी । हमें घटनाओं का प्रसंग याद रखना चाहिये । और की गई बातों पर अधिक आलोचना नहीं करनी चाहिये । और वैसा प्रसंग तथा अवसर उसी समय था जब सैंकड़ों राज्यों को बहुत ही शीघ्रता से कुछ एक सप्ताहों में ही भारत के साथ मिलाना था, और उस समय सत्य तो यह है कि कई राजाओं ने हमें कष्ट भी दिया होता, और उस समय यह भी स्थिति थी कि कई एक तो बहुत ही अधिक कष्ट

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

देने वाले भी थे, चुनांचि कई राजाओं ने गुप्त रूप से हमें कष्ट भी दिया : यह उन दिनों की बात है जब १५,अगस्त १९४७ को सांप्रदायिक दंगे शुरू हुए । ये दंगे राजनीतिक प्रवृत्ति के थे : इन राजाओं के परिवारों भाइयों और चाचाओं ने दंगों में बहुत क्षत्ति पहुंचाई और दंगों में भाग भी लिया, और बलवाइयों को धन और बन्दूक—शस्त्र, आदि भी दिये ताकि वे गड़बड़ पैदा करें। तो, यही उन दिनों की स्थिति थी : सैंकड़ों छोटे बड़े राज्य थे जिन्हें अपने भविष्य का कुछ भी पता नहीं था, वे अपनी जनता से, भारत सरकार से और कई अन्य तत्वों से डरते थे; और उन्हें ब्रिटिश राज्य की ओर से रक्षा मिलती थी। उस समय हम कई एक बातों का निश्चय कर सकते थे। यदि आप ही सोच लें, तो आप इस बातको समझ सकते हैं कि उन्हें उस समय पूरी तरह से हटाया भी जा सकता था, या उन के साथ कई शर्तें बांधी जा सकती थीं। और देश भर में शान्ति को खरीदा जा सकता था, ताकि देश को किसी भी प्रकार का खतरा नहीं पहुंच पाता। मेरी समझ में सरदार पटेल ने बहुत ही बुद्धिमत्ता से काम लिया। यों, तो हम अवसर और प्रसंग के बाद बुद्धिमत्ता जता सकते हैं और यह कह सकते हैं "यह बात इस तरह हो सकती थी, और वह बात और किसी तरीके से हो सकती थी।" किन्तु यदि आप को वह विशेष प्रसंग याद होगा जब कि भारत के टुकड़े-टुकड़े होने का डर था—क्यों कि विभाजन से लोगों की सांम्प्रदायिक भावनाओं को प्रोत्साहन मिला था, मार-काट हुई थी, साम्प्रदायिकता फैल रही थी, और ये सभी प्रतिक्रियावादी जागीरदारी और सामन्तशाही तत्व दंगा फैलाने के लिये मैदान में कूद पड़े थे, और यह भी आशा करते थे—कई एक को तो मैं भली भांति जानता भी हूं—यद्यपि उन की उस प्रकार की आशायें निराधार थीं, फिर भी आशा करते थे—तो उस समय हमें कोई निश्चय करना पड़ा। तो उस समय मुख्यतया सरदार पटेल, और आर्थिक रूप से हम सभी इस निश्चय पर पहुंचे कि जितनी भी शीघ्रता से हो सके और जितना भी पैसा खर्च किया जा सके, भारत को संगठित और दृढ़ कर देना ही अच्छा होगा, अन्यथा घरेलू दंगे और मार-काट चलते रहेंगे और जनता कटती रहेगी—क्योंकि अन्य बातों के अतिरिक्त भी, धन से अधिक मूल्यवान तो लोगों का जीवन और भारत का संगठन ही है—नहीं तो आपसी दंगों से आपदाओं के सिवाय और कोई भी चीज़ देखने को नहीं मिलती और लोग एक दूसरे से खिचे-खिचे रहते हैं। इस प्रकार हम इन निष्कर्षों पर पहुंचे और हम ने कई बातों का निपटारा किया जो अपने में, आर्थिक अथवा किसी अन्य दृष्टि से शायद ही उचित और न्याय सम्मत हों, किन्तु देश की इस कठिन-जटिल और महत्वपूर्ण समस्या को यथाशीघ्र हल करने के लिये इस प्रकार का बलिदान करना पड़ा था।

अब इस समय मैं इस बात के विस्तार में नहीं जा रहा हूं कि भविष्य में इस मामले को कैसे निपटाया जायेगा। इस समय यह प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। हां, इतना तो स्पष्ट है कि इन मामलों पर हमें भविष्य में विचार करना पड़ेगा, और मैं यह भी समझता और आशा करता हूं कि सभी सम्बद्ध व्यक्तियों द्वारा मित्रतापूर्ण भावना से विचार करना होगा। यह भी स्पष्ट है कि किसी एक स्थान में होने वाली घटनाओं से दूसरे स्थान की घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है और वहां उन की प्रतिक्रिया होती है। और इस में भी संदेह नहीं कि काश्मीर में जो कुछ भी हो रहा है या वहां जो कुछ भी होने की संभावना है उस की अन्य स्थानों में अवश्य प्रतिक्रिया होगी।

तो माननीय सदस्य डा० मुखर्जी ने कई एक बातों की ओर निर्देश किया। उन्होंने अनुच्छेद ३५२ के सम्बन्ध में बहुत कुछ कह

और उन्होंने मुझ से पूछा कि क्या आर्थिक गड़बड़ी, आर्थिक कठिनाई अथवा आयात अथवा संविधान के भंग होने से सम्बद्ध कई अन्य अनुच्छेद लागू किये जायेंगे । मैं उन के इस प्रश्न का उत्तर दूंगा । हमें इस समय उन के साथ जो भी सम्बन्ध है, हम उन अनुच्छेदों को लागू नहीं कर रहे हैं । हम ने उन्हें विचारार्थ प्रस्तुत तक भी नहीं किया है । मैं सदन से प्रार्थना करूंगा कि वह इस बात को याद रखे कि हमें किसी आधार पर चलना है चूंकि यह एक आधार है--मैं अपना कर्तव्य, भूल नहीं सकता किन्तु ऐसी बात हुआ करती है-- और यह आधार मेरी अनुपस्थिति में ही बना चुका है--मैं उन दिनों भारत में नहीं था अपितु अमरीका में था-- और वह आधार इस राष्ट्र के उस वीर निर्माता सरदार पटेल का बनाया हुआ है । यह उस समय की बात है जब यह नया संविधान बनाया जा रहा था--मैं पहले भी बतला चुका हूं और अब उसी को दोहरा रहा हूं, और जब काश्मीर का प्रश्न प्रस्तुत हुआ, यह बात संविधान के अनुच्छेद ३७० म चर्चित हुई थी । मैं आप से प्रार्थना करूंगा कि आप वह अनुच्छेद ३७० पढ़ें, क्यों कि यदि आप इस समय इस प्रश्न पर बहस करेंगे तो आप को उसी अनुच्छेद के आधार पर इस पर बहस करनी चाहिये जो हम मान चुके हैं, और जो हमारे संविधान का एक अंग है । आप ऐसा न कहें कि हम संविधान से बाहर चले जाते हैं । हमें स्वयं संविधान का ही सहारा ले कर काश्मीर की समस्या सुलझा रहे हैं ।

संविधान यही कहता है । जैसा निर्देश भी किया जा चुका है, यह सही है कि वह अनुच्छेद एक अन्तिम और ठोस उपबन्ध नहीं था । स्वयं वह अनुच्छेद एक अस्थायी एवं परिवर्तनशील अनुच्छेद था । किन्तु उस में भावी निश्चय को प्रणाली का उल्लेख हुआ था । इस में इस बात का उल्लेख हुआ था कि हमें भविष्य में किस प्रकार काम करना चाहिये और यदि विषयों की संख्या बढ़ जाये अथवा और कई बातें बढ़ जायें तो उन को किस प्रकार निपटाया जाना चाहिये । और इस प्रकार आप हर किसी स्थिति में दो प्रकार के विषय देख लेंगे । इन में से तो एक तीन बड़े विषयों या यों कहिये कि तीन तरह के विषयों--यानी, रक्षा, संचरण और वैदेशिक कार्य के सम्बन्ध में था । इन के सम्बन्ध में यदि इन की व्याख्या में कोई परिवर्तन किया जाने वाला था, तो राष्ट्रपति उसे काश्मीर सरकार अथवा वहां की संविधान सभा "के साथ परामर्श कर के" कर सकता था । और किसी चीज़ के सम्बन्ध में जो भी शब्द प्रयुक्त हुए वे 'परामर्श से,' ['in consultation with'] नहीं, अपितु 'सहमति से' ['with the concurrence of'] थे । ये शब्द वर्ष १९४९ में, नवम्बर या दिसम्बर में लिखे गये थे । और वह बात हमारे संविधान का एक अंग है ।

तो इस प्रकार की स्थिति में आप क्यों यह शिकायत कर लेते हैं कि हम संविधान से बाहर जा रहे हैं, और यह भी कि हम, अथवा काश्मीर को सरकार या जनता संविधान को भंग कर रही है ? यह हो सकता है कि काश्मीर की सरकार हम से कोई ऐसी बात करने को कहे जिसे हम उचित नहीं समझते । यह हो सकता है किन्तु इस में पारस्परिक प्रयत्न की बात है कि किस तरह कोई ऐसा रास्ता निकाला जाय जो उचित हो और समस्या को भी सुलझा दे । और यदि हम कोई ऐसा रास्ता नहीं ढूंढ़ निकालते जो उचित हो, तो इस प्रकार की बात नहीं हुआ करेगी तो यह स्पष्ट है कि हमें उन का परिणाम भुगतना पड़ेगा, वह चाहे कुछ भी हो । यह भी हो सकता है कि वे परिणाम हमें या उन्हें स्वीकार न हों । और कोई भी रास्ता नहीं । इस प्रकार की भी कोई बात नहीं कि हम कोई आज्ञप्ति या आदेश निकालें --जैसा कि कई माननीय सदस्यों

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

के संशोधनों से पता चलता है—या कोई कठोर आदेश जारी करें कि "इस आदेश का पालन करो, नही तो आपत्ति भुगतनी पड़ेगी ।" इस मामले को वैसे तरीके से नहीं निपटाया जा सकेगा । हमें कोई समझौता करना पड़ेगा, नहीं तो अपने किये का फल भुगतना पड़ेगा । किन्तु मेरा यह निवेदन है कि हम ने इस मामले को सदा ही एक मैत्री के वातावरण में समझा, और मेरी यह भी आशा है कि भविष्य में भी हम इसे मैत्रीपूर्ण वातावरण में समझ लेंगे, क्योंकि हमें इस बात का स्मरण करना होगा कि इस प्रश्न के आन्तरिक और बाह्य कई पहलू हैं जिन्हें हम और आप अपने दृष्टिकोण से नहीं देख सकते । तो इस समस्या का 'आन्तरिक' पहलू इस समय काश्मीर की सरकार के अधीन है । जिस भाग को गलती से आज़ाद काश्मीर कहा जाता है और जो पाकिस्तान के अधीन है उस का प्रभाव, उस का दूसरों पर प्रभाव विदेशों का भारत पर प्रभाव आदि इस प्रश्न के इतने पहलू हैं कि आप उन्हें अपने दृष्टिकोण से नहीं देख सकते । आप को इन सभी मामलों पर विचार करने पड़ेगा । यह भी हो सकता है कि काश्मीर के लोगो की दृष्टि में कोई विशेष पहलू हो, और यह भी हो सकता है कि आप ने उस पर विचार नहीं किया है, और यदि आप उस पर विचार करें तो आप को विश्वास भी होगा । क्या मैं माननीय सदस्यों के समक्ष इस बात की शिकायत करूं कि डा० मुखर्जी ने इस बात की शिकायत की कि उन से परामर्श नहीं लिया गया .....

डा० एस० पी० मुखर्जी : मैं ने शिकायत नहीं की ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : यदि मुझे यह कहने की सुविधा हो, तो मैं कहूंगा कि उन्हों ने इस के सम्बन्ध में ज़िक्र किया, और उसी के थोड़ी देर बाद उन्हों ने बताया कि शेख अब्दुल्ला ने उन्हें लिखा कि वह उन से मिलना चाहते थे और उन का परामर्श लेना चाहते थे .....

डा० एस० पी० मुखर्जी : निश्चय किये जाने के बाद ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : ठीक है, किन्तु यह बात कठिन भी है । निश्चय ही, डा० मुखर्जी शेख अब्दुल्ला या इस सरकार के किसी सदस्य से इस बात की आशा नहीं कर सकते कि वह किसी महत्वपूर्ण बात चीत के दौरान में औरों से परामर्श लेता फिरे । ऐसी बात असंभव है, और की भी नहीं जा सकती । यदि मुझे यह कहने की सुविधा हो तो मैं बतला-दूंगा कि मेरे मंत्रिमंडल के सदस्यों से शायद ही परामर्श लिया गया और उन सदस्यों को छोड़ कर जिन्हें इस मामले को निपटाने के लिये अधिकार मिल चुका था, अन्य सदस्यों से उस समय परामर्श किया गया जब बातचीत समाप्त हो चुकी थी । हम ने उन से इस बात पर विचार किया और उन की सहमति भी प्राप्त की । तो मैं यह कहने जा रहा था कि शेख अब्दुल्ला विरोधी दल के सदस्यों से मिलने का बहुत ही इच्छुक था : उसे डा० मुखर्जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ किन्तु वह डा० मुखर्जी के सहयोगी श्री चटर्जी से मिला और दो घंटे तक उस से बातचीत भी की । मैं उस बातचीत में उपस्थित नहीं था किन्तु श्री चटर्जी ने मुझे वह सब बातें लिखने और सूचना देने की कृपा की और यह भी कहा कि शेख अब्दुल्ला के साथ उस की यह बातें हुईं जिस से वह स्वयं प्रभावित भी हुआ । उस ने मुझे यही कुछ लिखा और उस में यह भी बताया कि उस बातचीत से पहले उसे कई बातों का पता नहीं था । आप देखेंगे कि इस प्रश्न के कई पहलू हैं । उन के अतिरिक्त एक और बात भी है । मैं अनुच्छेद ३५२ की ओर निर्देश कर रहा हूं जिस में आपात की उद्घोषणा

के सम्बन्ध में उल्लेख हुआ है—उस का पाठ इस प्रकार है :—

"यदि राष्ट्रपति को इस बात का पूरा विश्वास हो जाये कि कोई ऐसा गंभीर आपात सम्मुख है जिस से भारत अथवा भारत प्रदेश के किसी भाग की सुरक्षा को खतरा पहुंच रहा हो—यह खतरा चाहे युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक गड़बड़ से हो रहा हो—तो वह उद्घोषणा द्वारा तदनुसार इस प्रकार की घोषणा कर सकता है कि . . . . . " ।

तो इस प्रकार से राष्ट्रपति सभी प्रकार का उपचार कर सकता है कि यहां तक कि समग्र राज्य का प्रभार ले सकता है। इस बात चीत में हम ने काश्मीरी मित्रों की प्रार्थना पर यही करार किया और उन्हें यह सुझाव भी दिया कि जब भी आन्तरिक गड़बड़ हो जाये तो उन की सरकार के साथ परामर्श करने पर ही कार्यवाही की जायेगी। और यदि बाह्य आक्रमण अथवा युद्ध हो तो उन से परामर्श करना आवश्यक नहीं है। इस में सन्देह नहीं कि इस प्रकार का प्रशासन सम्बन्धी परिवर्तन उस सरकार के पक्ष में है और माननीय सदस्य इस की आलोचना भी कर सकते हैं। क्या माननीय सदस्य उस आधार को याद करेंगे जहां से हम ने यह बातचीत शुरू की थी ? हम इस समय अनुच्छेद ३७० से प्रारम्भ कर रहे हैं। अनुच्छेद ३७० से अनुच्छेद ३५२ रद्द हो जाता है और अन्य अनुच्छेद भी रद्द हो जाते हैं—यानी, इस समय संविधान के अनुसार चलते हुए, जैसी भी स्थिति में यह काश्मीर राज्य पर लागू हो जाता है, इन में से कोई भी उपबन्ध लागू नहीं होता। यहां तक कि हम ने यह कहा है कि इस मामले, सर्वोच्च न्यायालय, अथवा राष्ट्रपति के अन्य अधिकारों के सम्बन्ध में—ये सभी बातें काश्मीर के साथ बिल्कुल नई जोड़ दी गई हैं—यानी, राष्ट्रपति संसद् अथवा सर्वोच्च न्यायालय की सत्ता तक उन पर बिठाई गई और वे इन्हें स्वीकार कर रहे हैं। ये सभी बातें हमारे अधिकारों के साथ जोड़ दी गई हैं। अतः इस में कोई ऐसी बात नहीं कि हम कोई अधिकार छोड़ रहे हों। हम ने संविधान में विशेष रूप से यही उपबन्ध रखा हुआ है : "कि किसी गंभीर आपात में राष्ट्रपति सारे राज्य का प्रभार ले सकता है"—उपबन्ध उस राज्य पर लागू होना चाहिये किन्तु जब वहां आन्तरिक गड़ बड़ हो तो पहले उन की सहमति ली जायेगी। यह कुछ विचित्र सा लग रहा है और कोई लोग कहते हैं : "आप किस तरह उन की सहमति मांग सकते हैं या उस की प्रतीक्षा कर सकते हैं ?" यह इतना विचित्र उपबन्ध नहीं है सचाई यह है कि यदि सारा राज्य गड़बड़ में ग्रस्त हो तो उस समय कोई भी व्यक्ति किसी भी सहमति की प्रतीक्षा नहीं कर पाता; उस समय कार्यवाही की जाती है, किन्तु मैं यह भी बतला दूं कि यह विशेष शब्दावली अमरीकी संविधान से ली गई है, जहां पर आपात की स्थिति में राज्य सरकार की सहमति से संघीय सरकार सारे राज्यों का प्रभार संभाल सकती है। अतः इस में कोई नई बात नहीं, और, निस्सन्देह सदस्यों को इस बात का अधिकार प्राप्त है कि वे आलोचना करें या न करें। किन्तु तथ्य यह है कि इस में कोई ऐसी विचित्र अथवा विशेष बात नहीं और सभी परिस्थितियों में हमारा यही अनुभव रहा कि इस समस्या को छोड़ने की अपेक्षा यही अच्छा है कि हम इसे इस रूप में ही समझ लें।

इस के पश्चात् डा० मुखर्जी ने अंशतः आलंकारिक प्रश्न पूछा . . . . . .

डा० एस० पी० मुखर्जी : नागरिकता अधिकार।

श्री जवाहर लाल नेहरू : वह इतना आलंकारिक नहीं था ।

प्रश्न का अलंकारमय भाग यह था : क्या काश्मीर भारत की इस संसद् के अधीनस्थ है .....

डा० एस० पी० मुखर्जी : जहां तक इस संसद् का प्रश्न है — चाहे यह संसद् संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न संस्था है अथवा कोई अन्य संस्था– काश्मीर की संविधान सभा संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न है और दोनों मुख्य मंत्री संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न हैं ।

श्री जवाहर लाल नेहरू यहां तथ्य की हम जिन उपबन्धों पर विचार करते रहे हैं– यानी क्या ये उपबन्ध आपातकालीन हैं, क्या राष्ट्रपति को इस प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त हैं, क्या किसी विशेष राज्य में इस प्रकार के अधिकारों को संसदीय अधिकार माना जायेगा, अथवा क्या सर्वोच्च न्यायालय इसमें शामिल होता है––निश्चय ही सिद्ध करता है कि इस प्रश्न का कोई भी उत्तर देने की आवश्यकता नहीं कि सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्नता का माप क्या है और किस में है । मैं प्रसंग से दूर और अधिक वेग में बोलता जा रहा हूं– मैं संविधान के सम्बन्ध में तथा अन्य वैधानिक मामलों पर बोल रहा हूं किन्तु यह स्पष्ट है कि किसी संघीय संविधान में संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता वहां के राज्य और संघीय केन्द्र में विभाजित होती है। आपात या संकट की स्थिति में यह प्रभुत्वसम्पन्नता संघ अथवा केन्द्र में न्यस्त हो सकती है । यह एक जुदा बात है । मैं समझता हूं कि विधि मंत्री इस बात से सहमत नहीं हैं । मैं इस बात का विश्वस्त नहीं किन्तु कुछ भी हो यह एक छोटी सी बात है । संघ म ऐसी बात को विचित्र दलील माना जाता है कि क्या वह विभाजित होता है अथवा नहीं । आप अपना ही संविधान लीजिये ।

संविधान के भिन्न भाग हैं–सूची ३ या कोई भी सूची हो जो पूर्ण रूप से राज्यों के अधिकार में है ।

श्री गाडगिल (पूना मध्य) : सूची २ में हम किसी भी चीज़ का दावा नहीं कर सकते ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : मुझे मालूम है कि कोई सूची है वह कुछ भी हो––राज्य सूची है । पहली सूची संघ सूची है । सूची ३ ऐक्य सूची है । तो इस प्रकार राज्य प्रभुत्वसम्पन्नता का एक क्षेत्र है जिसे अन्तिम विश्लेषण में उलटाया जा सकता है और समाप्त किया जा सकता है । इस अर्थ में, मैं यही कह सकता हूं कि केन्द्र सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न है । इस के सम्बन्ध में संघों का भिन्न २ मत हो सकता है और विश्व भर में संघीय केन्द्रों की यही प्रवृति है कि वे (केन्द्र) अधिक दृढ़ एवं शक्तिशाली बनें । अतःएक–काश्मीर की संविधान सभा, जिस के सम्बन्ध में आप पूछ रहे हैं, यदि मुझे यह कहने की सुविधा हो, किसी हद तक संपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न बताई जा सकती है– कानून द्वारा नहीं, क्योंकि मैं कानूनी बात नहीं बता रहा हूं–और यह इसी प्रकार है जैसे कि मैं इस धारणा को मान कर चला था कि काश्मीर के लोग ही अन्ततः अपने भविष्य का निर्णय कर सकते हैं। हम उन्हें विवश नहीं करेंगे । उस अर्थ में काश्मीर के लोग अपने भविष्य का निर्णय करने में संपूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न हैं – यानी वे ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि काश्मीर हमारे साथ रहेगा या नहीं । वे संविधान को इस अर्थ में स्वीकार करने या भंग करने में सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न नहीं हैं, कि वह हमारे संविधान के भागीदार बन कर इस का वह भाग स्वीकार करें, जिस पर हमें प्रभुत्वसम्पन्नता प्राप्त है, और बाद में इस के क्षेत्र से बाहर जाने का प्रयत्न करें। हां, वे इस अर्थ में प्रभुत्वसम्पन्न हैं कि वे सारा संविधान अथवा इस का कोई अंश स्वीकार कर सकते हैं,

अथवा वे अन्य मामलों के सम्बन्ध में हम से कोई समझौता कर सकते हैं ।

हां, तो मैं एक बात सुन कर बहुत निराश हुआ । माननीय डा० मुखर्जी ने घृणा भरे शब्दों में हमारे राज्यपालों की ओर निर्देश करते हुए कहा कि वे तिरस्कृत और वर्जित लोग हैं ।

श्री एस० पी० मुखर्जी: नहीं ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : माननीय सदस्य ने ये ही शब्द बताये ।

अभी थोड़ी देर पहले, एक और अवसर पर, विरोधी दल के एक और सदस्य ने एक अधिकारी की ओर निर्देश किया; मैं समझता हूं और विश्वास भी करता हूं कि हम में से सभी सदस्य उस का बहुत सम्मान करते हैं, चुनांचि वह एक स्त्री है, और विरोधी सदस्य ने उस के लिये बहुत ही अधिक अपमानजनक शब्द कहे हैं ।

डा० एस० पी० मुखर्जी : मैं ने ऐसे शब्द नहीं कहे ।

श्री जवाहर लाल नेहरू : माननीय सदस्य (डा० मुखर्जी) ने नहीं, अपितु, और किसी सदस्य ने उन की ओर निर्देश किया चूनांचि अब वह इस सदन की सदस्य नहीं हैं । वह योजना आयोग की एक सदस्य हैं और उन के लिये अपमानजनक शब्द कहे गये–ऐसे शब्द कहे गये जिन से उन का या हमारा अपमान ही नहीं बल्कि कहने वाले माननीय सदस्य का भी अपमान हुआ । उन पर लगाये गये आरोप से ऐसा लग रहा था जैसे कि उन के पास से नौकरी मिल रही हो, या उन व्यक्तियों का परिवार-पोषण किया गया हो जिन्हें चुनावों में हार हुई थी । मेरा यह निवेदन है कि इस प्रकार से आरोप लगाना बिल्कुल नुचित है ; यह रवैया कुछ और भी अनुचित और कुन्सित हो जाता है जब उन सदस्यों पर आरोप लगाये जाते हों, जो सदन में अनुपस्थित हों और अपने आप को बचा नहीं सकते हों ।

मैं बहुत देर से बोलता रहा हूं । मैं ने आप का बहुत समय लिया है, इस के लिये मुझे खेद है । अभी कुछ दिनों में ही मेरे एक सहयोगी श्री गोपाल स्वामी आयंगार ने जैनेवा जा रहे हैं । हो सकता है कि मेरा कहना इतना ठीक न हो कि मुझे जैनेवा की बात चीत से बहुत आशायें हैं, किन्तु कुछ भी हो, हमें इस समस्या को सभी ऊंच-नीच परिस्थिति में से धकेल कर निकालना पड़ेगा । खैर, हमारी सद्भावनायें उन के साथ हैं, और सर्वप्रथम, हमारी शुभ इच्छायें जम्मू तथा काश्मीर राज्य के उन लोगों के साथ हैं जिन की भूमि को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में, यहां तक कि हमारे वाद-विवादों में एक खिलौना बनाया जा रहा है ।

उपाध्यक्ष महोदय : इन सभी संशोधनों में से .... ।

श्री रघुनाथ सिंह : मैं अपना संशोधन संख्या ६ वापिस ले रहा हूं ।

उपाध्यक्ष महोदय : शान्ति, शान्ति । मैं इन संशोधनों को प्रस्तुत करूंगा । मैं इन में से एक चुन लूंगा और सदन के समक्ष रखूंगा । यदि वह एक संशोधन विस्तृत और विशद हो और पारित हो जाये तो अन्य अस्वीकार होंगे । तो मैं अब संशोधन संख्या १६ जो सरदार अमर सिंह सहगल के नाम में है, प्रस्तुत करूंगा ।

प्रश्न यह है कि :

प्रस्ताव के अन्त में निम्नलिखित शब्द, जो इस प्र कार हैं जोड़ दिये जायें :—

"and having considered the same, this